ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

हिंदी में अनूदित मयलयालम उपन्यास : एक सांस्कृतिक सेतु

रजुला के वी

शोध छात्रा
डॉ. पी के राजन मेमोरियल कैंपस
कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल
rajulakv@gmail.com

मौलिक उपन्यासों की भाँति मलयालम से हिंदी में अनूदित उपन्यासों की भी अपनी एक परंपरा है। उपन्यास, जो अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, मलयालम में उसका आरंभ सन् 1889 में माना जाता है। ओ. चंतुमेनोन के द्वारा रचित 'इंदुलेखा' को मलयालम का पहला मौलिक उपन्यास के रूप में स्वीकृत किया गया है। इसके बाद मलयालम में कई ऐतिहासिक एवं क्लासिक उपन्यासों की रचना हुई। तकषी शिवशंकरापिल्लै, पी. केशवदेव, ललितांबिका अंतर्जनम्, वैक्कम मुहम्मद बषीर, एम टी वासुदेवन नायर, ओ वी विजयन, एम मुकुंदन, के आर मीरा आदि यथार्थवाद से लेकर उत्तराधुनिकता तक के कई उपन्यासकारों ने मलयालम उपन्यास को विश्व में एक नया पहचान प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जितना इनका योगदान महत्वपूर्ण है, उतना ही उन अनुवादकों का कार्य भी सराहनीय है जिन्होंने इनके उपन्यासों को अन्य भाषाओं में सफलतापूर्वक अनूदित किया है।

केरलीय संस्कृति की आदान-प्रदान एवं विकास में अनुवाद का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। भारत में, विशेषकर उत्तर भारत में केरलीय संस्कृति का प्रचार करने में हिंदी में अनूदित मलयालम उपन्यासों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। हालाँकि मलयालम का पहला मौलिक उपन्यास सन् 1889 में लिखी गई 'इंदुलेखा' है, लेकिन हिंदी में अनूदित पहला मलयालम उपन्यास सन् 1947 में लिखित तकषी शिवशंकरा पिल्लै का 'तोट्टियुटे मकन' (भंगी का बेटा) है। श्रीमति भारती विद्यार्थी ने इसका अनुवाद किया है। यथार्थवादी परंपरा की प्रतिनिधि के रूप में इस उपन्यास ने तत्कालीन केरलीय समाज एवं संस्कृति का सफल चित्रण पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। तब से लेकर मलयालम उपन्यासों के अनुवाद का यह सिलसिला आज भी जारी है। इसके बीच अनेक क्लासिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का सफल अनुवाद मलयालम से हिंदी में हुआ जिसको हिंदी पाठकों ने दोनों हाथों से स्वीकृत किया। 'मछुआरे'(तकषी शिवशंकरा पिल्लै), 'पड़ोसी'(पी केशवदेव), 'दादा का हाथी'(वैक्कम मुहम्मद बषीर), 'कथा एक प्रांतर की'(एस के पोट्टेक्काड़), 'हवेली', 'दूसरी बारी'(एम टी वासुदेवन नायर), 'ईश्वर की शरारतें'(एम मुकंदन) आदि इसका उदाहरण हैं।

वैश्वीकरण के इस दौर में व्यक्ति हर तरीके से दुनिया के साथ संपर्क में रहने का प्रयास कर रहा है ताकि दुनिया के कोने-कोने से संबंधित जानकारी हर क्षण उसे प्राप्त हों। वह चाहे तकनीकी संबंधी कार्य हो, विज्ञान हो, साहित्य हो, शिक्षा हो, राजनीती हो या संस्कृति। इन जानकारियों को प्राप्त करने के लिए इंटरनेट जैसे कई माध्यम आज उपलब्ध हैं। लेकिन संस्कृति का मुख्य वाहक साहित्य ही है। समाज का प्रतिबिंब होने के कारण संस्कृति को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य उपन्यास सफलतापूर्वक करता है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत की संस्कृति उसकी जीवन शैली, खान-पान, भाषा, विश्वास, आचार, वेश-भूषा आदि के आधार पर पूरी तरह से भिन्न हैं। एक ही देश में अलग-अलग संस्कृति। केरल की संस्कृति का परिचय उत्तर भारत के लोगों तक पहुँचाने का कार्य मलयालम उपन्यास और उसके हिंदी अनुवाद ने सफलतापूर्वक किया है।

यथार्थवाद(1940-1960) के समय के मलयालम उपन्यासों के हिंदी अनुवाद ने केरल के तत्कालीन समय के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति को हिंदी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त किया है जिसके द्वारा तत्कालीन केरलीय संस्कृति से वे परिचित हो पाये हैं। 'पड़ोसी', 'रस्सी', 'मछुआरे', 'भंगी का बेटा' आदि इस समय के प्रतिनिधि उपन्यास हैं। जिसमें उस समय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का व्यक्त चित्रण उपलब्ध हैं। यह ऐसा समय था जब केरल की ज़मीन्दारी व्यवस्था, दमित वर्गों का शोषण आदि के खिलाफ आन्दोलन ने केरलीय समाज को सक्रिय एवं घटनापूर्ण बनाया। जाति के नाम पर अपने ऊपर थोपे गए काम करने के लिए विवश निम्न जाति के लोगों को इस दुरवस्था से मुक्ति मिली। उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार काम करने की आज़ादी मिली। इस तरह स्वतंत्र श्रमिक वर्ग संघटित होकर आन्दोलन करने लगे। इन सामाजिक बदलाव के कारण पीढ़ियों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुई। पुरानी पीढ़ी और युवा पीढ़ी के बीच जीवन रीति, सोच एवं व्यवस्था को लेकर उत्पन्न संघर्ष तथा वर्गों एवं जातियों के बीच का संघर्ष सामाजिक व्यवस्था में कोलाहल मचाने लगा। इस तरह पूँजीवाद एवं मातृसत्तात्मक व्यवस्था का पतन, जाति व्यवस्था का अंत, श्रमिक वर्ग का उत्थान, विदेशियों के जाने के बाद की सामाजिक स्थिति आदि का व्यक्त चित्रण इन उपन्यासों में मिलती है।

स्वतंत्रता के बाद की केरलीय सांस्कृतिक परिवेश इस समय के उपन्यासों में पायी जाती है। यही कारण है कि ये सारे उपन्यास पाठकों के मन में अपना छाप छोड़ा। इन उपन्यासों का अनुवाद भी मौलिक रचनाओं से कम नहीं दिखायी पड़ता। यही वजह है कि हिंदी के पाठक भी इन उपन्यासों से परिचित हैं। यथार्थवादी समय के केरलीय संस्कृति का एक व्यक्त चित्र इन अनूदित उपन्यासों के द्वारा हिंदी भाषी पाठकों तक पहुँचा है।

आधुनिकता(1960-1990) तक आते-आते केरल के सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। नायर तरवाड़ (सवर्ण परिवार) एवं समाज में उनका आधिपत्य समाप्त हो चुका था। इसके स्थान पर समाज के अवर्ण एवं श्रमिक लोग मुख्यधारा में आने लगे थे। सभी को शिक्षा, मंदिरों में प्रवेश करने का हक़, आदि प्राप्त हुआ तथा समाज में एकता कायम होने लगा। नारी की स्थिति सुधरने लगी तथा राजनीति के क्षेत्र में भी बदलाव प्रकट होने लगा जो अनिवार्य था। 'ईश्वर की शरारतें', (एम मुकुंदन), 'हवेली'(एम टी वासुदेवन नायर) आदि उपन्यास इसका उत्तम उदाहरण हैं। पथभ्रष्ट युवा पीढ़ी, जीवन के प्रति निराशा का भाव, अस्तित्व का खोज आदि जो आधुनकिता की विशेषताएँ हैं वह इन उपन्यासों में देख सकते हैं। इन प्रवृत्तियों ने केरल के सामाजिक जीवन एवं उसमें आये परिवर्तन में स्पष्ट प्रभाव डाला है।

इन उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण है। समाज के निम्न श्रेणी के लोगों को मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत करके इन उपन्यासकारों ने उपन्यास के क्षेत्र में एक आन्दोलन शुरू किया। यथार्थ ने कल्पना का स्थान ले लिया। यही कारण है कि ये उपन्यास केरलीय संस्कृति के वाहक हैं। अनुवादकों के लिए यह अत्यंत उत्तरदायित्व भरा काम है कि वह इन सामाजिक स्थितियों एवं संस्कृति से परिचित हो ताकि एक विशेष संस्कृति को उसी रूप में लक्ष्य भाषा के पाठकों तक पहुँचा सकें। इन उपन्यासों के अनुवादकों ने इस कठिन काम को कुशलता के साथ निभाया है। एन ई विश्वनाथ अय्यर, श्रीमति भारती विद्यार्थी, सुधांशु चतुर्वेदी, राकेश कालिया, अभयदेव आदि इस क्षेत्र के दिग्गज हैं जिन्होंने केरल की संस्कृति को हिंदी के पाठकों तक पहुँचाया। संस्कृति के आदान-प्रदान में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह संस्कृति के विकास में भी लाभदायक रहा है। जो व्यक्ति केरल का चरित्र, जीवन, सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति आदि के बारे में जानने के लिए इच्छुक हैं, उनके लिए यह अनुवाद परंपरा अत्यंत लाभदायी रहा होगा। क्योंकि अनुवाद का अर्थ केवल शब्दानुवाद नहीं है। श्रोत भाषा में व्यक्त भाव को उसी रूप में लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना अनुवाद कहलाता है। इन अनुवादकों ने तथा इनकी अनूदित रचनाओं ने इस बात को साबित किया है। भाषा एवं बोली को लेकर उठनेवाली कुछ समस्याएँ अनुवाद में ज़रूर दिखाई देती है। प्रादेशिक बोलियाँ, जो किसी भी देश की संस्कृति की नींव होती है, पूर्ण रूप से इसका अनुवाद लगभग असंभव है।

मलयालम उपन्यासों के हिंदी अनुवाद के संदर्भ में यह एक मुख्य समस्या है। या तो प्रत्येक शब्द, चीज़ों के नाम आदि को उसी रूप में दिया गया है, या फिर लगभग समानतायें मिलनेवाले शब्दों के प्रयोग से अर्थ को व्यक्त करने की कोशिश की गई है। 'मछुआरे', 'दादा का हाथी', आदि उपन्यासों में

इस समस्या को उसके पूर्ण रूप में देख सकते हैं। जिसका मलयालम और हिंदी भाषा पर पकड़ मज़बूत हो, ज्ञान हो, वही इस संदर्भ में इस समस्या का समाधान ढूँढ़ पाएँगे। केरल के सांस्कृतिक पक्ष को व्यक्त करनेवाले कई उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में हुआ है और आज भी कई अनुवादक इस क्षेत्र में सक्रिय हैं। सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए यह प्रयास अत्यंत लाभदायक है। यह अनुवाद प्रक्रिया तब सफल होती है जब यह केवल एक उपन्यास या कथावस्तु का भाषांतरण मात्र न होकर एक देश की संस्कृति का वाहक बनता है। मलयालम उपन्यास के हिंदी अनुवाद ने इस लक्ष्य को पाने में सफलता प्राप्त किया है और सांस्कृतिक सेतु के रूप में यह सफर अभी भी जारी है।

संदर्भ :

1. मारुन्ना मलयालम नोवल, के पी अप्पन, गौतमा पब्लिषेर्स, आलप्पुष़ा, 1988।
2. मलयाल साहित्य चरित्रम नूट्टाण्डुकलिलूडे: अंजाम भागम, प्रो.(संपा.)पत्मना रामचंद्रन नायर, करन्ट बुक्स, तिरुवनंतपुरम, 2003।
3. केरल की सांस्कृतिक विरासत, जी(संपा.)गोपीनाथन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
4. मलयालम उपन्यास साहित्य का इतिहास, डॉ. चेन्नित्तला कृष्णन, नायर, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2008।